

प्रवचन नं. ३०२, श्लोक-१५५-१५६,

मंगलवार, भाद्र शुक्ल १३

दिनाङ्क ०४-०९-१९७९

आज नौवाँ दिन है न? दसलक्षणी पर्व का नौवाँ आकिंचन धर्म। जिसका मोह सर्वथा गल गया है। आकिंचन किसे होता है? मुनि। मुनि किसे कहा जाता है? आहाहा! जिसे सर्वथा मोह गल गया है। अपने आत्मा के हित में निरन्तर लगे रहते हैं। अपना आनन्दस्वरूप भगवान्, उसमें निरन्तर आनन्द में लगे रहते हैं, वे मुनि हैं। उन्हें आकिंचन धर्म होता है और सुन्दर चारित्र के धारण करनेवाले। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान् अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाला, चारित्र अर्थात् अन्तर चरनेवाले। अन्तर आनन्दस्वरूप में चरनेवाला चारित्र। उसे चारित्र कहते हैं।

वह और घर, स्त्री, पुत्रादि छोड़कर मोक्ष के लिये दीक्षा, चारित्र धारण किया है। अपने स्वरूप की दृष्टि और रमणता में लीन होने के लिये चारित्र ग्रहण किया है। वे मुनि संसार में विरले हैं। वे मुनि तो संसार में विरले हैं। उसमें अभी तो क्या मुनिपना है? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र विरल है। जो स्वतः निज हितार्थ तप करते हैं, चारित्र धारण किया है। तप में मुनिपना। तप कल्याणक आता है न? देह से, राग से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव करके उसमें लीन होने की दशा प्रगट की है। दूसरों के लिये शास्त्र आदि दान करते हैं, उनके सहायक भी हैं, ऐसे योगीश्वर संसार में अत्यन्त दुर्लभ हैं। पहले तो चारित्रवन्त दुर्लभ हैं परन्तु उसमें भी पर को कोई शास्त्र आदि का दान दे, राग का त्याग करके (दान दे), वह तो बहुत दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं।

समस्त शास्त्र के जाननेवाले वीतराग ने अपने आत्मा से समस्त वस्तुओं को भिन्न जानकर सबका त्याग कर दिया। ऐसा कहो या सबको छोड़ा तो शरीर, पुस्तकादि क्यों नहीं छोड़े? उसका उत्तर:—शरीर आदि में किसी प्रकार की ममता नहीं होती। आहाहा! यह दसलक्षणी पर्व चारित्र का पर्व है। चारित्र, वह कोई क्रियाकाण्ड, नग्नपना या पंच महाव्रत के परिणाम वे कोई चारित्र नहीं हैं। आहाहा! अन्तर भगवान् आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव करके अन्तर में लीन होना, वह चारित्र है। इसलिए उसे मौजूद नहीं है। उसे शरीरादि है तो भी नहीं है। उनके प्रति ममता नहीं है। आहाहा!

आकिंचन है न ? किंचन मात्र पर का ममत्व नहीं । यह शरीर और पुस्तक होवे तो भी उसका ममत्व नहीं और बिना आयु से शरीर का नाश तो होता नहीं, परन्तु वे शरीरादि में किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं करते । यदि शरीरादि में किसी प्रकार का ममत्व करे तो वह जिनेन्द्र आज्ञा भंगरूप महादोष का भागी होता है । आहाहा ! मुनि शरीर की ममता तो करते नहीं परन्तु पुस्तकादि मिले, वह मेरी है, ऐसी ममता नहीं करते । आहाहा ! ऐसी बात है, भाई ! मुनिपना आकिंचनपना वह कोई अलौकिक बात है । आहाहा ! उस आकिंचन की बात हुई । अब अपने १५५ कलश है न ?

समयसार १५५ कलश ।

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-  
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः ।  
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्धीः कुतो,  
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५५॥

धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे राग से भिन्न अपने आत्मा की दृष्टि और अनुभव हुआ हों । आहाहा ! कोई बाह्य की क्रिया करता है, इसलिए धर्मी है, ऐसा नहीं है । आहाहा ! अन्तर में आत्मा का अनुभव करता है । राग से, विकल्प से, शरीर से भिन्न होकर आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव करता है, वह धर्मी, वह धर्म करनेवाला है ।

यह चित्स्वरूप लोक ही भिन्न आत्मा का (पर से भिन्नरूप परिणमित होते हुए आत्मा का) शाश्वत, एक और... आहाहा ! धर्मी को तो यह लोक और परलोक आत्मा में है । आलोक—चिद्लोक, ज्ञानलोक शाश्वत स्वभाव भगवान, वह अपना आलोक है । शरीरादि वह कोई अपना लोक नहीं है । आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म । यहाँ तो (कहा कि) चित्स्वरूप लोक ही हमारा लोक है । धर्मी ऐसा मानता है कि ज्ञानस्वरूप मेरा आत्मा, वही मेरा लोक है । आहाहा ! शरीरादि तो नहीं परन्तु दया, दान का राग वह भी मेरी चीज़ नहीं है । आहाहा ! चित्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चैतन्य चन्द्रमा, शीतलता के स्वभाव से—वीतरागभाव से भरपूर यह चित्तलोक, वह मेरा लोक है । सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा !

यह भिन्न आत्मा का (पर से भिन्नरूप परिणमित होते...) राग से प्रभु भिन्न है तो धर्मी भिन्न होकर अपने आत्मा का परिणमन करता है। आहाहा! वर्तमान चलती प्रथा से वस्तु अलग है। आहाहा! भगवान आत्मा राग से भिन्न होकर अपने चित्स्वरूप लोक से ही परिणमता आत्मा शाश्वत् (है)। वह चित्स्वरूप ध्रुव चीज़ शाश्वत है। ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान आत्मा का वह शाश्वत है। वह कोई नया नहीं, क्षणिक नहीं। आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जो अपना चिद्लोक शाश्वत् है, उसे (अपना) मानता है और अनुभव करता है। आहाहा! कठिन बात है।

शाश्वत, एक... ज्ञायकस्वरूप भगवान शाश्वत् है और एक है, भेद नहीं। आहाहा! राग तो नहीं परन्तु पर्याय का भेद भी जिसमें नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! शाश्वत, एक और सकलव्यक्त... आहाहा! उसमें अव्यक्त कहा। यहाँ सकलव्यक्त (कहा, अर्थात्) त्रिकाल ज्ञायकभाव अन्दर प्रगट है। आहाहा! राग का, दया, दान, भक्ति-राग का भाव है, वह राग है। उस राग से चिद्लोक शाश्वत भिन्न है। आहाहा! वह एक है। शाश्वत् है, एक है। आहाहा! और सर्व काल प्रगट है। अस्तिरूप से तो अपनी सत्ता, अस्तित्व शाश्वत् वह सकल व्यक्त है। आहाहा! वह वस्तुरूप से सकल व्यक्त है। आहाहा! ऐसी भाषा, लो। सर्व काल में प्रगट है।

क्योंकि मात्र चित्स्वरूप लोक को यह ज्ञानी आत्मा स्वयमेव एकाकी देखता है... आहाहा! धर्मी जीव—ज्ञानी जीव अपने चित्स्वरूप लोक को देखता है, अपने चित्स्वरूप लोक का अनुभव करता है। ऐसी बात है। आहाहा! है? मात्र चित्स्वरूप लोक को यह ज्ञानी आत्मा स्वयमेव एकाकी देखता है... मात्र चित्स्वरूप लोक, जिसमें दया, दान, विकल्प, राग का भी अभाव है। वह सब क्रिया तो राग है। आहाहा! मात्र चित्स्वरूप लोक को [अयं स्वयमेव एककः लोकयति] आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का पन्थ अन्तर में धर्मी की चीज़ कोई अलग है। वह कोई क्रियाकाण्ड और राग और भक्ति, पूजा, व्रत और यात्रा वह कोई धर्म नहीं है, वह तो राग है। आहाहा! उस राग से भिन्न भगवान है।

ज्ञानी आत्मा स्वयमेव एकाकी... अकेला राग की अपेक्षा छोड़कर चिद्घन,

ज्ञानघन भगवान आत्मा को देखता है... अकेला स्वरूप। राग की अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की भी जिसमें अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वयमेव, स्वयं-एव—स्वयं ही। 'एव' है न? स्वयमेव एकाकी देखता है... आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञान, शाश्वत् आत्मा, ध्रुव आत्मा, नित्य आत्मा को अकेला देखता है और अकेला अनुभव करता है। ऐसी बात है। आहाहा! इस धर्मी की चीज़ यह है। धर्मी कुछ यह दया पाले और व्रत करे और अपवास करे, वह कोई धर्म नहीं है, वह तो राग है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! वीतराग मार्ग, जिनेश्वर त्रिलोकनाथ का कहा हुआ पन्थ कोई अलौकिक है।

यह तो सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान जब हुआ, अभी चौथा, हों! पाँचवाँ और छठवाँ मुनि, वह तो कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! यहां तो सम्यग्दृष्टि हुआ, आत्मा ज्ञायकभाव, नित्यभाव, शुद्धभाव, ध्रुवभाव, वह भाव अपना है, ऐसा अपना मानकर, उसे अकेला पर की अपेक्षा बिना अनुभव करता है, देखता है। आहाहा! उसका नाम धर्मी और धर्म कहा जाता है। कान्तिभाई! यह सब ऐसा कभी सुना नहीं। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! यह करने का है, बापू! यह करने का है, बोलते थे, भाई! भाई कहते थे। सत्य बात, बापू! आहाहा! अरे रे! पहले श्रद्धा तो करे कि यही करने योग्य है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भाई! आहाहा!

धर्मात्मा स्वयमेव एकाकी देखता है... क्या कहते हैं? जिसमें राग की मन्दता की क्रिया की भी अपेक्षा नहीं, ऐसा भगवान चिद्लोक, ज्ञानलोक, आनन्दलोक स्वयमेव स्वभाविक नित्य शाश्वत् लोक आत्मा, सकल व्यक्त प्रगट, उसे अकेला अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? एकाकी देखता है—अनुभव करता है। यह चित्स्वरूप लोक ही तेरा है,... आहाहा! 'लोक्यंति इति लोकः' जो ज्ञान में जानने में आता है। शरीर—वाणी—मन, वह तो मिट्टी-जड़ धूल है। आहाहा! अन्दर में जो पाप का राग, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग (आवे), वह तो पापतत्त्व भिन्न तत्त्व है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह तो राग, पुण्यतत्त्व है, वह आत्मा नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि चित्स्वरूप लोक ही तेरा है। यह राग नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान। ज्ञान अर्थात् यह शास्त्रज्ञान नहीं। जाननस्वभाव शाश्वत, वह मेरा लोक है।

आहाहा! इसलोक और परलोक का भय ज्ञानी को नहीं है क्योंकि इसलोक और परलोक अपना आत्मा है। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें। अरे रे! अनन्त काल से इस चैतन्य के दर्शन और भान बिना भटका। मुनिपना अनन्त बार लिया, दिगम्बर सन्त अनन्त बार हुआ परन्तु यह क्रिया, पंच महाव्रत की क्रिया में धर्म माना। आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला, शुरुआतवाला, वह चित्स्वरूप लोक ही तेरा है (—ऐसा मानता है)। ज्ञानानन्दस्वभाव ध्रुव वह मेरा है, राग मेरा नहीं है, जड़ की क्रिया मेरी नहीं है, जड़ मेरा नहीं है, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लोक, गाँव, नगर मेरे नहीं हैं। आहाहा! है? चित्स्वरूप लोक ही... भाषा है? है न? [अयं स्वयमेव एककः लोकयति] आहाहा! शाश्वत् चैतन्यप्रभु, ध्रुव जो भगवान आत्मा, वह तेरा लोक है, ऐसा समकिति / धर्मी जानता है। आहाहा! [तद्-अपरः] उससे भिन्न... ज्ञायकस्वभाव ध्रुव, वह तेरा लोक है; उससे भिन्न यह लोक या परलोक तेरा नहीं है... आहाहा! यह राग, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, वह यह लोक तेरा नहीं है। यह लोक तेरा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार परलोक—स्वर्ग और नरक जाना, वह परलोक, वह भी आत्मा का नहीं है। आहाहा! यह लोक या परलोक तेरा नहीं है... ऐसा धर्मी अन्तर में अनुभव करता है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें हैं। यह तो अभी शुरुआत सम्यग्दर्शन की बात है। चारित्र तो कोई अलौकिक बातें हैं, बापू! अभी सम्यग्दर्शन बिना चारित्र आया कहाँ से?

सम्यग्दर्शन हुआ तो वह मानता है कि मेरा लोक तो चिद्घन, आनन्दकन्द, वह मेरा लोक है। उससे पर राग, दया, दान, विकल्प, शरीर, वाणी, मन, कुटुम्ब, यह लोक तो परलोक है, मेरा लोक नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, वह भी मेरा लोक नहीं। अरेरे! ऐसी बात है? उससे भिन्न दूसरा कोई... ज्ञायकस्वभाव भगवान नित्यानन्द प्रभु, वह मेरा लोक है। उससे भिन्न रागादि या शरीरादि या वाणी आदि या कुटुम्ब-कबीला, वह परलोक है; मेरा लोक नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह भी मेरा लोक नहीं है। आहाहा! मेरा होवे, वह मेरे पास रहे, भिन्न न पड़े। आहाहा! राग तो मेरे पास रहता नहीं, राग तो छूट जाता है। आहाहा! राग से रहित मेरी चीज़ जो है, ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु, वह मेरा लोक है, अपर मेरा लोक कोई है नहीं। आहाहा!

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव मेरा नहीं है। वह मेरा नहीं, वह मेरा नहीं, मेरा तो चिद्घन (लोक) है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! वीतरागमार्ग जिनेश्वर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोक में तो अभी स्थूल विपरीत बना दिया है। बस, यह व्रत करो और अपवास करो और यात्रा करो, यह धर्म। मन्दिर बनाओ और पूजा करो। वह तो सब राग है भाई! तुझे खबर नहीं। वह राग आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! धर्मी अपने स्वभाव से अपर व्यवहाररत्नत्रय के राग को भी अपना नहीं मानता। आहाहा! आज नौवां दिन है। अफर दिन है। आहाहा!

भगवान ज्ञायकस्वरूप ध्रुव, उस पर दृष्टि पड़कर जो अनुभव हुआ तो धर्मी ऐसा मानता है कि मेरा लोक तो यह है। रागादि मेरा लोक तीन काल में नहीं है। आहाहा! तेरा नहीं है, ऐसा ज्ञानी विचार करता है,... अथवा ऐसा जानता है,... और ऐसा ही अनुभव करता है। आहाहा! संसार में पड़े पूरे दिन, उसे ऐसा कहना। भाई! यह भटकने का पन्थ तो अनन्त काल से किया। छूटने का पन्थ एक सेकेण्ड भी कभी नहीं किया। मुनि हुआ, नग्न दिगम्बर मुनि, हजारों रानियाँ छोड़कर पंच महाव्रत का निरतिचार पालन किया, परन्तु वह तो राग है। आहाहा! राग, वह मेरा लोक नहीं। मेरा लोक तो राग से भिन्न ज्ञायकभाव, वह मेरा लोक है, आहाहा! वह मेरी चीज़ है। रागादि मेरी चीज़ नहीं तो फिर यह शरीर, कुटुम्ब, कबीला तो मेरी चीज़ है नहीं। आहाहा! देखो! यह सन्तों की वाणी।

सच्चे सन्त मुनि धर्मात्मा, जिन्हें अन्तर में आनन्द में लीन होने की जागृतदशा उग्र है, वे (ऐसा) कहते हैं कि मुनि को अथवा समकित्ती को अपना लोक तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान, नित्य प्रभु, शाश्वत् वस्तु है। पर्याय बदलती है, यह तो शाश्वत् वस्तु है। आहाहा! वह मेरा लोक है, ऐसा पर्याय मानती है। पर्याय ऐसा मानती है कि... पर्याय अर्थात् (क्या यह) अभी सुना न हो, कुछ खबर नहीं होती। यह तो जैन के एकड़ा के शून्य की बातें हैं। आहाहा! यह पर्याय अर्थात् अवस्था। वह अवस्था भी मैं नहीं। मैं तो शाश्वत् चिद्घन हूँ, वह अवस्था ऐसा मानती है। आहाहा! वह 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे' ऐसा आता है न? भाषा भूल गये। समयसार नाटक में श्लोक आता है। आहाहा!

अकेला भगवान शाश्वत् चिदानन्द। 'वस्तु विचारत ध्यावतें मन पावे विश्राम'

आहाहा! वस्तु, आत्मा वस्तु जिसमें अनन्त गुण बसे हैं, रहे हैं—ऐसी 'वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावे विश्राम' आहाहा! 'अनुभव ताकौ नाम' आहाहा! 'रस स्वादत सुख उपजे' परन्तु वह रस स्वादत उपजे, वह अनुभव। 'अनुभव ताकौ नाम' आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का रस पर्याय में आना। 'वस्तु विचारत' भगवान वस्तु त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, अनादि-अनन्त है, उसका कोई कर्ता नहीं। स्वयंसिद्ध वस्तु है, वह शाश्वत है। उसका विचार-ध्याने से 'मन पावे विश्राम' विकल्प छूट जाता है। आहाहा! 'रस स्वादत सुख उपजे' अतीन्द्रिय आनन्द के रस का स्वाद लेता है। 'रस स्वादत सुख उपजे' आनन्द की दशा उत्पन्न होती है। आहाहा! यह सुख। दुनिया के बाहर के सुख की कल्पना, वह तो मूढ़ ने मानी है। आहाहा! इन्द्रियों में सुख और पैसे में सुख और शरीर, स्त्री में सुख और... मूढ़ अज्ञानी अपने आनन्द के सुख को भूलकर पर में सुख मानकर चार गति में भटकता है। आहाहा!

यहाँ तो 'रस स्वादत सुख उपजे' आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु का स्वाद लेने पर 'रस स्वादत सुख उपजे' अतीन्द्रिय आनन्द का सुख उत्पन्न होता है। आहाहा! अरे! ऐसी बात। 'अनुभव ताको नाम' उसका नाम आत्मा का अनुभव और आत्मा के रस का स्वाद (कहने में आता है)। भाई! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। ऐसा मार्ग कहीं है नहीं। वीतराग के सिवाय कहीं यह बात नहीं है। अभी तो वीतराग के वाडा में भी गड़बड़ उठी है। आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव सीमन्धरस्वामी भगवान तो महाविदेह में विराजमान हैं। आहाहा! परमात्मा विराजते हैं, वहाँ से यह बात आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। दिगम्बर मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (गये और) आठ दिन वहाँ रहे थे। आहाहा! वहाँ से आकर यह (शास्त्र) बनाये। भगवान ऐसा मार्ग कहते हैं और ऐसा है। आहाहा!

जिसे धर्म की दृष्टि—सम्यग्दर्शन हुआ तो उस सम्यग्दर्शन में पूरे पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति आयी और साथ में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, रस के स्वाद के सुख की उत्पत्ति हुई। आहाहा! अरे! यह तो अकेली निश्चय की बातें (करते हैं), व्यवहार (तो कहते नहीं)। तेरा व्यवहार कहाँ है, धूल में, सुन न अब। आहाहा! ऐसा व्यवहार तो अभव्य ने भी अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज)

आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत और पाँच समिति, गुप्ति का निर्दोष (पालन किया)। उसके लिये आहार बनाकर दे और पानी की बूँद (दे तो) न ले। ऐसी क्रिया अनन्त बार की, आहाहा! परन्तु वह तो राग की क्रिया है। परन्तु राग से भगवान भिन्न, ऐसे आत्मा का ज्ञान किया नहीं, तो आत्मा के ज्ञान बिना सुख मिला नहीं। यह पंच महाव्रत के परिणाम दुःख है। आहाहा! अरे! यह कैसे उतरे? कहाँ बेचारा भटकता प्राणी, अनन्त काल में नरक और निगोद में भटकता हुआ, उसमें से आया, मनुष्य हुआ (परन्तु) कुछ भान नहीं होता। आहाहा! धर्म के नाम से भी सब घोटाला। राग की क्रिया करो तो धर्म होगा। यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा वीतराग धर्म कहते हैं। वह आत्मा चिद्घन आनन्दकन्द वह तेरी चीज़ है, इसके अतिरिक्त अपर रागादि तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! देखो! यह धर्मी की दृष्टि। सम्यग्दृष्टि का यह भाव। आहाहा!

ज्ञानी विचार करता है, जानता है, ... आत्मा ज्ञायकस्वभाव के अतिरिक्त कोई चीज़ मेरी नहीं है। वह पर मेरी चीज़ ही नहीं। आहाहा! [तस्य तद्-भी: कुतः अस्ति] इसलिए ज्ञानी को... धर्मी को (कि) जिसे आत्मा के ज्ञायकभाव का भान हुआ और ज्ञायकभाव का स्वाद लिया, ज्ञायकभाव के सुख का पर्याय में अनुभव हुआ, वह समकिति है। आहाहा! इसलिए समकिति को... ज्ञानी कहो या समकिति कहो। इस लोक का तथा परलोक का भय कहाँ से हो? आहाहा! इस लोक में मेरी यह सामग्री मरने तक रहेगी या नहीं? वृद्धावस्था आयेगी तो यह सब सामग्री रहेगी या नहीं? यह चिन्ता समकिति को नहीं होती। समझ में आया? वृद्ध होऊँगा और शरीर जीर्ण होगा तो यह सामग्री मेरा क्या करेगी? ऐसी चिन्ता नहीं है। आहाहा! तथा परलोक की चिन्ता नहीं है। यहाँ से कहाँ जाऊँगा? स्वर्ग में जाऊँगा या मनुष्य में जाऊँगा? स्वर्ग, नरक में मैं जाता ही नहीं। मेरा आत्मा मुझमें है, मैं तो वहाँ जाता हूँ। आहाहा! मांगीलालजी! ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

पर का त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। क्योंकि पर के त्याग-ग्रहण से तो भगवान त्रिकाली शून्य है परन्तु राग का त्याग भी आत्मा में यथार्थरूप से है नहीं। क्योंकि रागरूप आत्मा हुआ ही नहीं तो राग का त्याग करना, यह कहाँ रहा? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनजाने अज्ञानी व्यक्ति अनादि से भटकते हैं। उन्हें यह बात कैसे बैठे? एक तो पूरे दिन



धन्धा-पानी, धन्धे के पाप और स्त्री, पुत्र सम्हालना और भोग में पाप में (जाए), छह-सात घण्टे सोना, उसमें समय मिलता नहीं। कदाचित् घण्टे भर समय मिले तो यह भगवान के दर्शन करना और पूजा करना और भक्ति करना। यह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानी को इस लोक का तथा परलोक का भय कहाँ से हो? है? आहाहा! इसलिए... 'तस्य' ज्ञानी को... 'तद्-भी:' इस लोक का तथा परलोक का भय कहाँ से हो? वह तो स्वयं निरन्तर... आहाहा! चाहे तो वह ज्ञानी धन्धा-पानी में दिखायी दे तो भी ज्ञानी तो ज्ञान को ही निरन्तर अनुभव करता है। ज्ञातापने की पर्याय का वह कर्ता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह तो स्वयं निरन्तर... सम्यग्दृष्टि धर्मीजीव (धर्म की) शुरुआतवाला स्वयं निरन्तर। है न? 'स:' (अर्थात्) वह धर्मी। 'स्वयं सततं' स्वयं निरन्तर। निःशंक वर्तता हुआ... निर्भय वर्तता हुआ। आहाहा! निःशंक कहो या निर्भय कहो। स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ... आहाहा! क्या कहते हैं? स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ... शंका नहीं कि यह लोक मेरा है और परलोक मेरा है, ऐसी शंका नहीं है। मेरा लोक तो यह (चैतन्य) है। मेरी शाश्वत् चीज़, वह मेरा लोक है। आहाहा!

इस प्रकार स्वयं ही अपने से निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ सहज ज्ञान का (अपने ज्ञानस्वभाव का) सदा अनुभव करता है। आहाहा! स्वभाविक, सहज अर्थात् स्वभाविक ज्ञान अर्थात् अपना ज्ञानस्वभाव, जानन स्वभाव जो त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव। आहाहा! उसका सदा... त्रिकाल अनुभव करता है। ऐसे तो निरन्तर पहले आ गया है परन्तु यह तो 'सदा' डाला है (अर्थात्) त्रिकाल। धर्मी तो त्रिकाल भूत, वर्तमान और भविष्य में आत्मा के ज्ञान को ही अनुभव करता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! भव के अन्त का धर्म जो सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! मुनिपना तो अलौकिक चीज़ है, उसकी बात तो कहाँ? वह तो कहाँ है परन्तु सम्यग्दर्शन, वह कोई विरल चीज़ है। आहाहा!

वह (ज्ञानी) अन्तर में अपने स्वभाव में स्वयं निरन्तर निःशंक वर्तता हुआ। स्वभाव में निःशंकरूप वर्तता हुआ। स्वाभाविक ज्ञायकस्वभाव का सदा त्रिकाल अनुभव करता है।

भविष्य में ऐसा होगा और भूत में ऐसा था, ऐसा है नहीं। वह तो ज्ञायक का अनुभव त्रिकाल अपने में करता है। भविष्य में भी स्वर्ग में जाए तो भी अपने अनुभव में रहता है। आहाहा! समकिति स्वर्ग में जाता है? तो कहते हैं, नहीं। वह तो वहाँ भी अपने अनुभव में रहता है। आहाहा! और वहाँ से मरकर मनुष्य भव होता है तो कहते हैं, वहाँ भी ज्ञान के अनुभव में रहता है, ज्ञान की पर्याय के अनुभव में रहता है। ज्ञान मेरा स्वभाव है, वहाँ रहता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ है। पहले इसका ज्ञान तो करे। आहाहा! अभी ज्ञान का भी ठिकाना नहीं, श्रद्धा तो कहाँ से लाना? आहाहा!

**भावार्थ :** 'इस भव में जीवन पर्यन्त अनुकूल सामग्री रहेगी या नहीं?' वृद्धावस्था आयेगी, अनुकूल सामग्री रहेगी या नहीं? आहाहा! ऐसी चिन्ता रहना, इहलोक का भय है। इसका नाम इसलोक का भय कहलाता है। धर्मी को यह चिन्ता नहीं है। आहाहा! इतने पैसे संग्रह करके रखें, इतना माल रखें। बड़ी उम्र के होते हैं न? स्त्री मर गयी परन्तु दूसरी नहीं होवे तो सेवा कौन करेगा? इसलिए दूसरी से विवाह करना। आहाहा! यह चिन्ता ज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! वह बाह्य की सामग्री मरणपर्यन्त रहेगी या नहीं? यह चिन्ता ज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! ऐसी चिन्ता रहना इहलोक का भय है।

'परभव में मेरा क्या होगा?' अरे! देह छोड़कर मैं कहाँ जाऊँगा? देह तो छूटेगी तो कहीं तो जाएगा। यहाँ तो अमुक समय रहेगा, परलोक में कहाँ जाऊँगा? ऐसी चिन्ता का रहना परलोक का भय है। ज्ञानी जानता है कि—यह चैतन्य ही मेरा एक, नित्य लोक है... परलोक—फरलोक मुझे कहाँ जाना है। परलोक—प्रधानलोक मेरा चैतन्य, वह मेरा परलोक है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतराग मार्ग बहुत, बापू! लोगों ने पूरा विपरीत कर डाला है। वीतरागमार्ग को रागमार्ग में खतौनी कर डाला है। आहाहा! श्रद्धा अत्यन्त मिथ्यात्व श्रद्धा में घोंट रहे हैं।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! परलोक में कहाँ जाऊँगा, ऐसी चिन्ता समकिति को नहीं है। क्योंकि परलोक में जाऊँगा परन्तु मैं तो मेरी पर्याय में ही रहूँगा। वहाँ परलोक में मैं देवलोक में नहीं जाता। आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिति। नरक की आयु का बन्ध किया

था, पश्चात् भगवान् के निकट तीर्थकरगोत्र बाँधा। वर्तमान में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में हैं। वहाँ से (निकलकर) पहले तीर्थकर होंगे, आगामी चौबीसी के पहले तीर्थकर होंगे परन्तु कहते हैं कि यहाँ क्षायिक समकिति थे तो भी चिन्ता नहीं थी कि मैं कहाँ जाऊँगा? नरक में नहीं जाता, मैं तो मेरी पर्याय में ही वहाँ रहूँगा। आहाहा! श्रेणिक राजा चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में पहले नरक में हैं। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी के पहले तीर्थकर (होनेवाले हैं), परन्तु कहते हैं कि वे नरक में नहीं हैं। आहाहा!

एक प्रश्न हुआ था, भाई! लालभाई! श्रीमद् से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था कि श्रीकृष्ण कहाँ हैं? वह बाहर का सुना हुआ होवे न। (कहा), श्रीकृष्ण आत्मा में हैं।

**मुमुक्षु :** ज्ञानी का यही काम होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह बाहर की स्थिति का वर्णन है न! आहाहा! ऐसा प्रश्न किया। श्रीमद् को किसी ने प्रश्न किया, ऐसा कि वह बाहर का सुनते हैं न कि इस प्रकार पाप बाँधे थे और नरक में गये हैं। इसलिए (पूछा) श्रीकृष्ण कहाँ हैं? तो कहा, श्रीकृष्ण आत्मा में हैं। आहाहा! नरक के क्षेत्र में भी नहीं, वे तो आत्मा में हैं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी देह छोड़कर कदाचित् नरक का आयुष्य बँध गया हो और नरक में जाए तो वह नरक में नहीं है, वहाँ तो आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कोई सम्यग्दृष्टि हो और पहले तिर्यच का आयुष्य बँध गया हो, पश्चात् वह नरक में तो न जाए, तिर्यच में भोगभूमि में जाए। तीन पल्य का आयुष्य और वहाँ तीन कोस ऊँचा (शरीर हो)। तो कहते हैं कि वह वहाँ गया परन्तु वहाँ वह आत्मा में है। वह जुगलिया हुआ ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! जहाँ भगवान् पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव की दृष्टि में जहाँ आया, आहाहा! उसमें से हटकर राग में या परलोक में रहता है? उसमें से हटता ही नहीं, सदा उसमें ही रहते हैं। आहाहा! वह तो ज्ञान की परिणति में चंचल, चपल हुए बिना अकम्परूप से ज्ञान में ही जहाँ-तहाँ रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! धर्म चीज कोई अलौकिक है। आहाहा! लोगों ने मान रखा है और सब मनवाया है, (वैसा स्वरूप नहीं है)। आहाहा!

जिसने सम्यग्दर्शन में पूरी पूर्णानन्द की चीज़ को जहाँ प्रतीति में, अनुभव में लिया तो अब कहते हैं कि वह रहता कहाँ है ? तो कहते हैं, वह अपने में रहता है। स्वर्ग में गये, यह तो व्यवहार से कथन है। अपने में रहे हैं। नरक में गये ? तो कहते हैं, नहीं। वह अपने में है। तिर्यच में गये ? समकिति को पहले आयुष्य बँध गया हो तो तिर्यच में जुगलिया में जाता है। तो कहते हैं, वहाँ भी आत्मा में है। आहाहा! समझ में आया ? यह प्रश्न पूछा था, खबर है ? चेतनजी! श्रीमद् को पूछा था। बाहर में ऐसी बात आती है न कि नरक में गये हैं। ऐसा जवाब दिया, प्रभु! सुन, श्रीकृष्ण समकिति धर्मात्मा थे। आहाहा! वे जहाँ हैं, वहाँ आत्मा में हैं। आहाहा! आया या नहीं यह ? इस लोक और परलोक की चिन्ता ही नहीं है। इस लोक और परलोक सब मेरा यह है। चिद्घन आत्मा यह लोक और पर अर्थात् प्रधान परलोक यह है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! कठिन बातें, भाई! दुनिया के लोग अभी बेचारे कहीं भटकते पड़े हैं। उन्हें अभी धर्म क्या और कैसे हो, इसकी भी खबर नहीं होती। आहाहा! वह मरकर भटकते हुए कहाँ जाएँगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! ज्ञानी जानता है कि—यह चैतन्य ही मेरा एक, नित्य लोक है... आहाहा! ध्रुव मेरा लोक है, ऐसा जानती है पर्याय परन्तु ध्रुव मेरा लोक है (ऐसा जानती है)। समझ में आया ? नित्यानन्द प्रभु शाश्वत् वस्तु, वह मेरा लोक है, ऐसा पर्याय जानती है। आहाहा! नित्य लोक है जो कि सदाकाल प्रगट है। ध्रुव वस्तु तो सदा काल व्यक्त-प्रगट ही वस्तु है। आहाहा! वह तो पर्याय की अपेक्षा से पर्याय को व्यक्त कहते हैं तो इसे अव्यक्त कहते हैं, परन्तु उसे वस्तुरूप से देखो तो स्वयं की अपेक्षा से व्यक्त प्रगट नित्य वस्तु है। ध्रुव शाश्वत् प्रगट.. प्रगट.. प्रगट। आहाहा! हैं ?

**मुमुक्षु :** प्रगट अर्थात् अस्ति।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अस्ति। आहाहा! अस्ति नहीं, प्रगट ही वस्तु प्रगट ही है, ऐसा। उसकी शाश्वत् चीज़ व्यक्त-प्रगट है। पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहा, वह दूसरी अपेक्षा है परन्तु वस्तुरूप से जो है, वह तो प्रगट वस्तु है या नहीं ? है या नहीं ? तो है तो प्रगट है। ढँकी हुई है ? आहाहा! कठिन बातें, भाई! अभी के लोगों की अपेक्षा बहुत अन्तर है, भाई! दुनिया की सब खबर नहीं ? आहाहा!

सदा काल प्रगट है। सदा काल व्यक्त ही है। आहाहा! ध्रुव सदा काल है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई लोक मेरा नहीं है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ मेरी है, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। यह मेरा चैतन्यस्वरूप लोक किसी के बिगाड़े नहीं बिगड़ता। आहाहा! ध्रुव भगवान आत्मा किससे बिगड़े? आहाहा! ऐसा जाननेवाले ज्ञानी के इस लोक का अथवा परलोक का भय कहाँ से हो? कभी नहीं हो सकता। वह तो अपने को स्वाभाविक ज्ञानरूप ही... चैतन्यरूप, ज्ञायकरूप अनुभव करता है। बहुत सूक्ष्म, बापू! कहो, यह समझ में आया या नहीं? ऐ... नटु! यह धन्धा-बन्धा मैं नहीं, ऐसा कहते हैं। इस धन्धा सम्बन्धी का राग होता है, वह भी मैं नहीं।

मुमुक्षु : मुद्दा नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं नहीं, अर्थात् चैतन्य, वह मैं। दुकान पर बैठे और फिर यह सब व्यवस्था करता हूँ और यह करता हूँ, परन्तु वह तेरी चीज़ नहीं तो तू व्यवस्था कहाँ से करे? समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! वीतराग... वीतराग परमात्मा जिनेश्वर देव के मार्ग की पद्धति कोई अलौकिक है। अभी तो लौकिक जैसा, लोक जैसा ऐसा स्थूल कर डाला। आहाहा! यह पूजा की और भक्ति की और यात्रा की, हो गया धर्म। अरे! धूल भी नहीं, सुन है! आहाहा! धर्मी ऐसा भगवान अपने धर्म को सम्हालता नहीं और राग तथा पर को सम्हालने जाए... आहाहा! वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

अपने को स्वाभाविक ज्ञानरूप ही... भाषा है? है? वह तो [सः स्वयं सततं निश्शंकः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति] आहाहा! यह एक बात की। एक कलश में दो वेदना को उड़ा दिया—यह लोक और परलोक। सात भय है न? एक में दो भयों को उड़ा दिया। अब वेदना रही। शरीर में रोग होता है तो वह आत्मा की वेदना है? वह तो जड़ की दशा, वह तो मिट्टी है। रोग कहना, वह भी एक अपेक्षित बात है। बाकी तो पदार्थ की अवस्था, उसरूप हुई है, वह तो ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। आहाहा! रोग कहना किसे? वह तो निरोग अवस्था की अपेक्षा से रोग कहा जाता है। बाकी वास्तव में तो रोग की पर्याय, परमाणु की पर्याय की अवस्था उस काल की वैसी है। आहाहा! बहुत अन्तर। हैं? अभी चलता मार्ग और यह कहना। आहाहा! अरे! वीतराग परमात्मा जिनेश्वरदेव का पुकार है। तीन लोक के नाथ की वाणी में, दिव्यध्वनि में यह आया है। वह यह बात है। आहाहा!

कलश - १५६

अब वेदनाभय का काव्य कहते हैं:-

( शार्दूलविक्रीडित )

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते,  
निर्भेदोदित-वेद्य-वेदक-बलादेकं सदानाकुलैः ।  
नैवान्यागत-वेदनैव हि भवेत्तद्गीः कुतो ज्ञानिनो,  
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५६॥

श्लोकार्थ : [निर्भेद-उदित-वेद्य-वेदक-बलात्] अभेदस्वरूप वर्तते हुवे वेद्य-वेदक के बल से (वेद्य और वेदक अभेद ही होते हैं, ऐसी वस्तुस्थिति के बल से) [यद् एकं अचलं ज्ञानं स्वयं अनाकुलैः सदा वेद्यते] एक अचल ज्ञान ही स्वयं निराकुल पुरुषों के द्वारा (-ज्ञानियों के द्वारा) सदा वेदन में आता है, [एषा एका एव हि वेदना] यह एक ही वेदना (ज्ञानवेदन) ज्ञानियों के है। (आत्मा वेदक है और ज्ञान वेद्य है।) [ज्ञानिनः अन्या आगत-वेदना एव हि न एव भवेत्] ज्ञानी के दूसरी कोई आगत (-पुद्गल से उत्पन्न) वेदना होती ही नहीं, [तद् भीः कुतः] इसलिए उसे वेदना का भय कहाँ से हो सकता है? [सः स्वयं सततं निश्शङ्कः सहजं ज्ञानं सदा विन्दति] वह तो स्वयं निरन्तर निःशङ्क वर्तता हुआ सहज ज्ञान का सदा अनुभव करता है।

भावार्थ : सुखदुःख को भोगना वेदना है। ज्ञानी के अपने एक ज्ञानमात्र स्वरूप का ही उपभोग है। वह पुद्गल से होनेवाली वेदना को वेदना ही नहीं समझता, इसलिए ज्ञानी के वेदनाभय नहीं है। वह तो सदा निर्भय वर्तता हुआ ज्ञान का अनुभव करता है॥१५६॥

कलश - १५६ पर प्रवचन

१५६ (कलश), वेदना भय ।

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते,  
निर्भेदोदित-वेद्य-वेदक-बलादेकं सदानाकुलैः ।

नैवान्यागत-वेदनैव हि भवेत्तद्भिः कुतो ज्ञानिनो,  
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥१५६॥

[निर्भेद-उदित-वेद्य-वेदक-बलात्] अभेदस्वरूप वर्तते हुवे वेद्य-वेदक के बल से (वेद्य और वेदक अभेद ही होते हैं...) क्या कहते हैं? कि आत्मा वेदन करनेवाला और आत्मा की वेदना। अनुभव का वेदन करनेवाला और उसका अनुभव का वेदन। वेद्य-वेदक अभेद में होता है। आहाहा! है? आहाहा! वह इसमें आ गया, नहीं? २१६ गाथा। वेद्य-वेदक। पर का वेद्य-वेदक नहीं है, आत्मा का वेद्य-वेदक है। आहाहा! २१६। वेद्य (अर्थात्) वेदनयोग्य और वेदक अभेद होता है। वेदनयोग्य भी आनन्द और वेदनेवाला आत्मा। आहाहा! (ऐसी वस्तुस्थिति के बल से)... क्या कहा? भगवान् आत्मा वेदन करनेवाला और वेदनयोग्य अपनी अनुभवदशा। आनन्द की दशा वेदनयोग्य और वेदन करनेवाला आत्मा। वास्तव में तो सब पर्याय है। समझ में आया? आहाहा!

निर्मल पर्याय वेदनेवाली और निर्मल पर्याय वेदनयोग्य। आत्मा तो ध्रुव है। अपेक्षा से कहते हैं। आहाहा! यह तो आ गया है, नहीं? अलिंगग्रहण का बीसवाँ बोल। आत्मा वेदन में अपनी पर्याय को वेदता है, वह आत्मा है। वह आत्मा वेदन में ध्रुव को नहीं वेदता। अरे! अब ऐसी बातें। अलिंगग्रहण में आया था न? वस्तु अखण्डानन्द प्रभु की दृष्टि हुई तो वेदनयोग्य दशा वीतरागी हुई। शान्ति और अकषायी परिणति हुई, वह वेदनयोग्य और वेदनवाला यह आत्मा। यह तो अभेद की-अभेद की बात है। आहाहा! वेदन करनेवाला आत्मा और राग वेदनयोग्य, यह वस्तु में नहीं है। आहाहा! वेदन करनेवाला आत्मा और रोग वेदनयोग्य, यह आत्मा में नहीं है। राग वेदनयोग्य और वेदन करनेवाला आत्मा, ऐसा आत्मा में नहीं है। अब ऐसी बातें! कहाँ जाना मनुष्य को इसमें? बेचारा... आहाहा!

अन्दर प्रभु तू महाप्रभु महात्मा है, परमात्मा है, वीतराग है। वह तेरी चीज़ है। वीतरागस्वरूप की मूर्ति प्रभु चैतन्य प्रतिमा है। वह वेदन करनेवाला और उसकी निर्मल जाति, वह वेदनयोग्य। परन्तु आत्मा वेदन करनेवाला और राग वेदनयोग्य, (ऐसा) वस्तु में नहीं है। आत्मा वेदन करनेवाला और राग वेदनयोग्य, (यह) वस्तु में नहीं है। अरे! ऐसी बातें! जो सुना हुआ हो, उससे दूसरा प्रकार। सब सिरपच्ची। आहाहा! भाई! तूने सत्य को सुना नहीं। आहाहा! 'तत् प्रति प्रीति चितेन् वार्ताऽपि श्रुताः' यह वार्ता सुनी नहीं, कहते हैं

और जिसने ऐसी बात प्रेम से, रुचि से, सुनी, उसे अल्प काल में मोक्ष हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! है न, यह आता है न? आहाहा!

(वेद्य और वेदक अभेद ही होते हैं...) यह क्या कहा? अनुभव करनेवाला और अनुभव करनेयोग्य आत्मा ही है। अनुभव करनेवाला आत्मा और राग अनुभव करनेयोग्य, ऐसा है नहीं। ऐसा भेद है नहीं। अरे.. अरे..! ऐसी बात। अभी ऐकड़ा का खबर न हो बेचारों को, उसमें ऐसी बातें। क्या हो? बापू! यह तो अभी धर्म का एकड़ा है। आहाहा! वेद्य अर्थात् वेदनयोग्य और वेदन करनेवाला अभेद ही होता है। वह का वह आत्मा वेदन करनेवाला और आत्मा वेदनयोग्य। आहाहा! आनन्द की दशा वेदनयोग्य और आत्मा वेदन करनेवाला। परन्तु आत्मा वेदन करनेवाला और राग वेदनयोग्य, (ऐसा) वस्तु में नहीं है। समझ में आया? ओहोहो! सन्तों ने संक्षिप्त शब्दों में सत्य को प्रसिद्ध किया है, सत्य का उंका बजाया है। आहाहा! दिगम्बर सन्त अर्थात् चलते सिद्ध। आहाहा! है? वेद्य-वेदक आत्मा है। आत्मा आनन्द का वेदन करनेवाला और आनन्द का वेदन करनेवाला आत्मा ही है। आत्मा वेदन करनेवाला और राग वेदक है, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)